दमन सिंह और अन्य

बनाम

पंजाब राज्य और अन्य

(4 अप्रैल, 1985)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी, ई० एस० वेंकटरामय्या और रंगनाथ मिश्र)

पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटी ऐक्ट, 1961—धारा 13(8)(9)(ए) और 30—[सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 31 क(1)(ग), सातवीं अनुसूची की सूची-1 की प्रविष्टि 43 एवं सूची 2 की प्रविष्टि 32]—'सहकारी सोसाइटी' पद की अर्थव्याप्ति—सहकारी सोसाइटी एक निगम है—दो या अधिक सहकारी सोसाइटियों के समामेलन से संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ग) के अधीन नागरिक के अधिकार का अतिक्रमण नहीं होता है।

नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त—दो या अधिक सहकारी सोसाइटियों का समामेलन—समामेलन के पश्चात् नोटिस सोसाइटी के प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत रूप से नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि उक्त अधिनियम के अधीन गठित सहकारी सोसाइटी का एक बार सदस्य बन जाने पर व्यक्ति सोसाइटी के मुकाबले अपना व्यक्तित्व खो देता है—नोटिस केवल सोसाइटी के मार्फत ही दिया जाना चाहिए—सोसाइटी को नोटिस सदस्यों को दिया हुआ नोटिस माना जाएगा और इससे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता।

सहकारी सोसाइटियों के अनिवार्य समामेलन के लिए उपबंध करने हेतु सम्बन्धित राज्यों में प्रवृत्त सहकारी सोसाइटी अधिनियमों के सुसंगत उपबन्धों की विधिमान्यता के प्रश्न पर उच्च न्यायालयों की राय एकमत प्रतीत होती है। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालयों की पूर्ण न्यायपीठों और पटना उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ ने ऐसे उपबंधों की विधिमान्यता को कायम रखा है किन्तु वादार्थी, विशेषतः, ऐसे वादार्थी, जो निधि पर नियंत्रण रखने की स्थिति में हैं, ऐसी एकमत न्यायिक राय से बहुत

ही कम रुक पाते हैं। इसलिए पंजाब की कई सहकारी सोसाइटियों ने पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट, 1961 की धारा 13(8) की शक्तियों को चुनौती देते हुए इस न्यायालय में अपील फाइल की हैं। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—संविधान, 1950 के अनुच्छेद 31-क(1)(ग) यह उपबंध है कि दो या अधिक निगमों को लोकहित में या उन निगमों में से किसी का उचित प्रबंध सुनिश्चित करने के उद्देश्य से समामेलित करने के लिए उपबंध करने वाली कोई भी विधि इस आधार पर शून्य नहीं समझी जायेगी कि वह अनुच्छेद 14 या 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी भी अधिकार से असंगत है अथवा कोई अधिकार छीनती है या उसे न्यून करती है। (पैरा 3)

सहकारी सोसाइटी एक निगम है जैसा सामान्य रूप में समझा जाता है। न्यायालय ऐसा नहीं मानता कि संविधान की स्कीम इसमें कोई प्रभेद करती है। वास्तव में संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 43 से सहकारी सोसाइटी का स्पष्ट रूप से अपवर्जन इस मत को दर्शाता है कि ऐसे अपवर्जन के सिवाय सहकारी सोसाइटियां निगम शब्द के अर्थ में सम्मिलित की जाएंगी। (पैरा 6, 7)

संसद् द्वारा स्पष्ट रूप से यह सोचा गया था कि संरक्षण केवल कम्पनियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए किन्तु ऐसे निगमों तक भी विस्तारित किया जाना चाहिए जिसमें वास्तविक रूप से कानूनी निगम भी सम्मिलित किये जा सकें। बहुत ही व्यापक पद 'निगम' का प्रयोग किया गया था जिससे कि सभी कम्पनियां, कानूनी निगम और इसी के समान अन्य संस्थाएं भी उसके अन्तर्गत लाई जा सकें। इस बात का कोई संकेत नहीं है कि 'निगम' जैसे व्यापक पद के प्रयोग के होते हुए भी वह पद कम्पनियों से भिन्न निगमों और कानूनी निगमों को अपवर्जित करने के लिए आशयित था। संसद् ने स्पष्ट रूप से किसी भी प्रकार के निगमों के समामेलन से सम्बन्धित विधान के संरक्षण को सीमित करने की दृष्टि से इस व्यापक शब्द का प्रयोग करना पसंद नहीं किया था किन्तु सभी प्रकार के निगमों के समामेलन से सम्बन्धित विधान के संरक्षण की दृष्टि से इस व्यापक अभिव्यक्ति का प्रयोग किया था। (पैरा 8)

न्यायालय के समक्ष के मामलों में न्यायालय का सम्बन्ध ऐसी सहकारी सोसाइटियों से है जो प्रारंभ से ही कानून द्वारा शासित होती हैं और वे कानून द्वारा सृजित की गई हैं, वे कानून द्वारा नियंत्रित होती हैं और इसलिए किसी व्यक्ति को संगम बनाने की स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन के आधार

पर उनके गठन में कानूनी हस्तक्षेप के बारे में कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। (पैरा 9)

सहकारी आंदोलन का मूल दर्शन और धारणा लोकहित और सहकारी सोसाइटियों के समामेलन से प्रेरित है। जब ऐसा समामेलन सहकारी सोसाइटियों के हित में हो तब वह निश्चित रूप से केवल लोकहित में है अथवा वह सोसाइटियों का उचित प्रबंध सुनिश्चित करने के लिए ही हो सकता है। (पैरा 10)

जब कोई व्यक्ति एक बार किसी सहकारी सोसाइटी का सदस्य हो जाता है तब वह सोसाइटी के मुकाबले अपना व्यक्तित्व खो देता है और उसके कानूनी और उपविधि द्वारा उसे दिये गये अधिकारों के सिवाय कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। उसे सोसाइटी के मार्फत ही कार्य करना चाहिए और बोलना चाहिए अथवा सोसाइटी के अधिकारों या कर्तव्यों के सन्दर्भ में केवल सोसाइटी ही निकाय के रूप में उसकी ओर से कार्य कर सकती है और बोल सकती है। इसलिए यदि कानून, जो सहकारी सोसाइटी के अनिवार्य समामेलन के लिए प्राधिकृत करता है, सम्बन्धित सोसाइटियों को नोटिस के लिए उपबंध करता है तो नैसर्गिक न्याय की अपेक्षा का पूर्ण रूप से पालन हो जाता है। सोसाइटी को नोटिस उसके सभी सदस्यों को नोटिस के रूप में माना जाएगा। इसीलिए धारा 13(9)(क) सोसाइटी को नोटिस देने के लिए न कि सदस्यों को व्यक्तिगत नोटिस देने के लिए उपबंध करती है। तथापि, धारा 13(9)(ख) सदस्यों को सुनवाई का अवसर देने के लिए भी उपबंध करती है यदि वे सुनवाई करवाना चाहते हैं। किसी सदस्य को व्यक्तिगत रूप से नोटिस निगमित निकाय के रूप में किसी सहकारी सोसाइटी की मूल हैसियत के प्रतिकूल है और इसलिए वह अनावश्यक है। सदस्य को, जो विहित समय के भीतर प्रस्तावित समामेलन के बारे में आक्षेप करता है, धारा 31(11) द्वारा यथास्थिति अपने शेयर, निक्षेप या ऋण वापस लेकर बाहर निकल जाने का विकल्प दिया गया है। (पैरा 11)

पक्षकारों और काउन्सेल के लिए पिटीशनों और अपील के ज्ञापन आदि में ऐसे कई आधार उठाना असामान्य बात नहीं है किन्तु बाद में वे तर्क के दौरान स्वयं को उन आधारों में से केवल कुछ आधारों तक ही सीमित रखते हैं क्योंकि शेष आधार स्वयं उनके द्वारा भी कायम रहने योग्य नहीं माने जाते हैं। इसके पश्चात् कोई पक्षकार या काउन्सेल यह शिकायत करने के लिए हकदार नहीं है कि जिन आधारों पर बहस नहीं की गई थी उन पर विचार

नहीं किया गया था। व्यथित पक्षकार पुनर्विलोकन या स्पष्टीकरण के लिए उचित आवेदन फाइल करके उसके लिए आदेश करने वाले न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर सकता है। वरिष्ठ न्यायालयों का समय इस प्रश्न की जांच करने में व्यर्थ नहीं गंवाया जाना चाहिए कि क्या किसी विशेष आधार पर, जिसके बारे में अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय में कोई निर्देश नहीं पाया जाता है, उस न्यायालय के समक्ष बहस की गई थी अथवा नहीं। (पैरा 13)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1978] ए० आई० आर० 1978 आंध्र प्रदेश 121 (पूर्ण न्यायपीठ)
[1976] ए० आई० आर० 1976 कर्नाटक 148 (पूर्ण न्यायपीठ)
[1976] पंजाब ला जनरल 302 (पूर्ण न्यायपीठ)
[1968] ए० आई० आर० 1968 पटना 211
[1972] आई० एल० आर० 1972 आंध्र प्रदेश 1140 1
[1971] [1971] 2 उम० नि० प० 358=[1971] 3 एस० सी० आर० 840 :
दमयंती नारंग बनाम भारत संघ; 9

[1962] (1962) सप्ली० 1 एस० सी० आर० 156 :
बोर्ड आफ ट्रस्टीज, आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तिब्बिया कालेज, दिल्ली बनाम दिल्ली राज्य 5

सिविल अपीली अधिकारिता : 1979 की सिविल अपील सं० 206, 2861, 250, 320, 1607, 3548, 379, 769, 1280 और 1985 की सिविल अपील सं० 1476-1483.

सिविल रिट पिटीशन सं० 4327/78, 3430/79, 4713/78, 4937/78, 1345/79, 3217/79, 5121/78, 24/78, 5195/78, 4340/78, 4613/78, 4793/78, 4753/78, 4386/78, 4545/78, 4585/78 और 1257/79 में पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के क्रमशः तारीख 10-1-79, 28-9-79, 16-1-79, 26-4-79, 27-9-79, 15-1-79, 8-1-79, 19-4-79 के निर्णय और आदेशों के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एम० के० राममूर्ति, आर० सी० पाठक, अरविंद कुमार, श्रीमती लक्ष्मी अरविंद, कुमारी

के० वी० ललिता, सर्वश्री अरुण मदान, सर्वश्री मित्तर, मनोज स्वरूप और कुमारी ललिता कोहली

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एम० एस० गुजराल, एस० के० बग्गा, स्वराज कौशल, आर० एस० सोडी और एम० पी० झा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया ।

न्यायाधिपति चिन्नप्पा रेड्डी—

सहकारी सोसाइटियों के अनिवार्य समामेलन के लिए उपबंध करने हेतु सम्बन्धित राज्यों में प्रवृत्त सहकारी सोसाइटी अधिनियमों के सुसंगत उपबन्धों की विधिमान्यता के प्रश्न पर उच्च न्यायालयों की राय एकमत प्रतीत होती है । **आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालयों की पूर्ण न्यायपीठों और पटना उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ**[1] ने ऐसे उपबंधों की विधिमान्यता को कायम रखा है किन्तु वादार्थी, विशेषतः ऐसे वादार्थी जो निधि पर नियंत्रण रखने की स्थिति में हैं, ऐसी एकमत न्यायिक राय से बहुत ही कम रुक पाते हैं । इसलिए पंजाब की कई सहकारी सासाइटियों ने पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट, 1961 की धारा 13(8) की शक्तियों को चुनौती देते हुए इस न्यायालय में अपील फाइल की हैं । उक्त धारा सहकारी सोसाइटियों के हित में यदि आवश्यक हो, सहकारी सोसाइटियों के अनिवार्य समामेलन के लिए उपबंध करती है । उठाए गए प्रश्न साधारण और सीधे हैं और उनके सीधे उत्तर दिए जा सकते हैं । दुर्भाग्य से इन प्रश्नों पर इस न्यायालय में बड़ी संख्या में अपीलें फाइल की गई हैं और हमें यह बतलाया गया है कि इनमें इन्हीं या समान प्रश्नों को अन्तर्वलित करने वाले बहुत से रिट पिटीशन इस न्यायालय के विनिश्चय की प्रतीक्षा में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों में लम्बित हैं । हम आशा करते हैं कि यह विनिश्चय मुकदमे के इस पहलू को हल कर देगा और सहकारी आंदोलन को अग्रसर करने में सहायक होगा । हमारे विचार से सहकारी आंदोलन के इतिहास की प्रकृति

---

1 ए० आई० आर० 1978 आंध्र प्रदेश 121 (पूर्ण न्यायपीठ)
ए० आई० आर० 1976 कर्नाटक 148 (पूर्ण न्यायपीठ)
1976 पंजाब ला जनरल 302 (पूर्ण न्यायपीठ)
ए० आई० आर० 1968 पटना 211.
आई० एल० आर० 1972 आंध्र प्रदेश 1140 में न्या० वैद्य द्वारा भी बहुत ही उत्तम विवेचन किया गया है ।

1985(4) eILR(PAT) SC 133

को निर्दिष्ट करना अनावश्यक है और यह कहना पर्याप्त है कि सहकारी आंदोलन को अग्रसर करना राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों में से एक है (देखिए संविधान का अनुच्छेद 43) हमेशा की तरह इन और ऐसे मामलों में प्रतिशपथ-पत्रों में, जहां वे फाइल किए गए हैं, बहुत-सी अपेक्षित बातें छोड़ दी जाती हैं और वे बहुत ही कम सहायक होते हैं। किन्तु जैसा कि हमारे द्वारा प्रायः बतलाया जा चुका है, विधान की शक्तियों का कार्यपालिका के ऐसे अधीनस्थ अधिकारियों के शपथ-पत्रों के आधार पर विनिश्चय नहीं किया जाना चाहिए जिन्हें विधानमण्डल के लिए वक्ता के रूप में प्राधिकृत किया हुआ मुश्किल से ही कहा जा सकता है। किन्तु हमें अभिलेख से उपलब्ध बहुत ही कम सामग्री से भी यह बात स्पष्ट है कि विभिन्न राज्यों में सहकारी सोसाइटियों के समामेलन से सम्बन्धित उपबंध अखिल भारतीय सम्मेलन में किए गए नीति सम्बन्धी विनिश्चय के अनुसार अधिनियमितियों में अंतःस्थापित किए गए थे। यह बात इन परिस्थितियों से स्पष्ट है कि ये उपबंध लगभग एक ही समय पर विभिन्न राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा अधिनियमित किए गए थे। अखिल भारतीय सम्मेलन में नीति सम्बन्धी विनिश्चय का निर्देश आंध्र प्रदेश और कर्नाटक उच्च न्यायालयों की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णयों में मिल सकता है। मामले के इस पहलू पर कुछ और कहना अनावश्यक है।

2. पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट, 1961, जिसने पूर्ववर्ती अधिनियम को प्रतिस्थापित किया था, अधिनियमित किया गया था और यही बात अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों में कहीं गई हैं। 'आदेश में सहकारी आंदोलन के विकास में सभी बाधाओं को दूर करने के लिए सहकारी विधि और प्रक्रिया के सरलीकरण के लिए भारत सरकार की नीति के अनुसरण में' उद्देश्यों और कारणों के कथन में आगे यह भी कहा गया है—

> "दायित्व के परिवर्तन, **सोसाइटियों के समामेलन**, सोसाइटियों के विभाजन, विवादों को तय करने और सोसाइटियों के समापन आदि से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण उपबंध विलंबकारी और जटिल प्रकृति के पाए गए थे इसलिए उनसे सहकारी सोसाइटियों के दैनिक काम-काज में समस्याएं उत्पन्न होती थीं। इसलिए सभी अनावश्यक विलम्बों को, विशेषतः सोसाइटियों के रजिस्ट्रीकरण में होने वाले विलम्ब को, कम करने के लिए विशेष सावधानी बरती गई है और इस आशय के उपबंध को सरल बनाया गया है। परिवर्तन को प्रभावित करने वाला अन्य दृष्टिकोण सहकारी विधि को व्यापक बनाने का है। तथापि हमारी राष्ट्रीय नीति के अनुरूप आर्थिक क्रियाकलापों के विभिन्न

क्षेत्रों में सहकारी सोसाइटियों के संगठन और विकास को अग्रसर करने के लिए सहकारी ऋण समितियों की तुलना में बहुत ही कठिन और जटिल प्रकार की सहकारी सोसाइटियां बननी हैं···।"

धारा 2(ग) सहकारी समिति को परिभाषित करती है और उससे इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी अथवा रजिस्ट्रीकृत समझी गई सोसाइटी अभिप्रेत है। अध्याय 2 धारा (3 से 14) सहकारी सोसाइटियों के रजिट्रीकरण से सम्बन्धित है। विशेषत: धारा 8 रजिस्ट्रीकरण से पूर्व अपेक्षित शर्तों को विहित करती है और रजिस्ट्रार को सोसोइटी और उसकी उपविधियों को रजिस्टर करने के लिए प्राधिकृत करती है, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि शर्तों का पालन किया गया है। धारा 13 सहकारी सोसाइटियों के समामेलन, आस्तियों और दायित्वों के अन्तरण और विभाजन के लिए उपबंध करती है जबकि धारा 13(2) स्वैच्छिक समामेलन के लिए उपबंध करती है। धारा 13(8) अनिवार्य समामेलन के लिए उपबंध करती है, यदि रजिस्ट्रार का यह समाधान हो जाता है कि सहकारी समितियों के हित में ऐसा करना आवश्यक है। धारा 13(9)(क) में रजिस्ट्रार से सम्बन्धित सोसाइटियों को और साहूकारों को प्रस्तावित आदेश की प्रतिलिपि भेजने की अपेक्षा है और धारा 13(9)(ख) रजिस्ट्रार से सम्बन्धित सोसाइटियों से अथवा ऐसी सोसाइटियों के किसी सदस्य या लेनदार से प्राप्त हुए आक्षेपों पर विचार करने की अपेक्षा करती है। धारा 13(11) ऐसे किसी सदस्य या लेनदार को, जिसने उपधारा (9) के अधीन प्रस्तावित आदेश के बारे में आक्षेप किया है, ऐसी सोसाइटी को आवेदन करने पर यथास्थिति अपने शेयर, निक्षेप या उधार वापस लेने का विकल्प देती है जिसमें उसके शेयर निक्षेप या उधार ऐसे आदेश की तारीख से 30 दिन की कालावधि के भीतर उपधारा (8) के अधीन आदेश के परिणामस्वरूप आबंटित हो गई हैं। इन उपबंधों की शक्तिमत्ता को ही इन अपीलों में चुनौती दी गई है और पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट की धारा 13 की उपधारा (8), (9), (10) और (11) को इस प्रक्रम पर उद्धृत करना उपयोगी होगा। वे इस प्रकार हैं—

"13. (1)······
(2)······
(3)······
(4)······
(5)······
(6)······

(7)……

(8)……

*(8) जहां रजिस्ट्रार का यह समाधान हो गया हो कि सहकारी सोसाइटी या सहकारी सोसाइटियों के हित में यह आवश्यक है कि—

(i) किसी सहकारी सोसाइटी को दो या अधिक सहकारी सोसाइटी बनाने के लिए विभाजित कर दिया जाए; या

(ii) एक या अधिक सहकारी सोसाइटियों को किसी अन्य सहकारी सोसाइटी के साथ समामेलित कर दिया जाए; या

(iii) दो या अधिक सहकारी सोसाइटियां नई सहकारी सोसाइटी बनाने के लिए समामेलित की जाए, वहां इसमें इससे पूर्व अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, रजिस्ट्रार वित्त पोषण संस्था, यदि कोई हो, से परामर्श के पश्चात् निम्नलिखित के लिए उपबंध कर सकेगा—

(क) उस सहकारी सोसाइटी का दो या अधिक सहकारी सोसाइटियों में विभाजन के लिए, या

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

(8) Where the Registrar is satisfied that it is necessary in the interest of the co-operative society or co-operative societies that—

(i) any co-operative society be divided to form two or more co-operative societies; or

(ii) one or more co-operative societies be amalgamated with any other co-operative society; or

(iii) two or more co-operative societies be amalgamated to form a new co-operative society, then, notwithstanding anything herein before contained, the Registrar may, after consulting the financing institution, if any, provide for—

(a) the division of that co-operative society into two or more co-operative societies; or

(ख) सोसाइटी या सोसाइटियों का—

(i) किसी अन्य सहकारी सोसाइटी के साथ समामेलन के लिए, या

(ii) नई सहकारी सोसाइटी बनाते समय उसका ऐसा गठन करना जिसमें समिति में प्रतिनिधित्व संपत्ति में अधिकार ऐसे हित/दायित्व, कर्तव्य और बाध्यताएं, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, सम्मिलित हों;

(9) उपधारा (8) के अधीन कोई भी आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि—

(क) सम्बन्धित सोसाइटी या सोसाइटियों और लेनदारों को डाक में डाले जाने के प्रमाण-पत्र के अधीन प्रस्तावित आदेश-की प्रतिलिपि न भेज दी गई हो;

(ख) रजिस्ट्रार ने सम्बन्धित सोसाइटी या सोसाइटियों से या ऐसी सोसाइटी या सोसाइटियों के किसी सदस्य या लेनदार से ऐसी कालावधि के भीतर, जो प्रस्तावित आदेश के भेजने की तारीख से पन्द्रह दिन से कम न हो, जो प्रस्तावित

(b) the amalgamation of the society or societies—

(i) With any other co-operative society, or

(ii) to form a new co-operative society, with such constitution including representation on the committee, property rights, interests, liabilities, duties and obligations, as may be specified in the order.

(9) No order shall be made under sub-section (8), unless—

(a) a copy of the proposed order has been sent under certificate of posting to the society or societies concerned and the creditors;

(b) the registrar has considered the objections received from the society or societies concerned or from any member or creditor of such society or societies within such period, being not less than fifteen days from the date of posting of the proposed

आदेश में इस निमित्त रजिस्ट्रार द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए, प्राप्त आक्षेपों पर विचार न किया हो।

(10) रजिस्ट्रार, उप-धारा (9) में निर्दिष्ट आक्षेपों पर विचार करने के पश्चात् प्रस्तावित आदेश में ऐसे उपान्तरण कर सकेगा जो वह उचित समझे और आदेश में ऐसे आनुषंगिक, परिणामी और अनुपूरक उपबंध होंगे जो रजिस्ट्रार उन्हें प्रभावी करने के लिए आवश्यक समझे।

(11) किसी सदस्य या लेनदार को, जिसने उप-धारा (9) के अधीन प्रस्तावित आदेश के बारे में आक्षेप किया हो, ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिन की कालावधि के भीतर आवेदन करने पर, जो ऐसी सोसाइटी को किया जाएगा, जिसे उप-धारा (8) के अधीन आदेश के फलस्वरूप उसका शेयर, निक्षेप या ऋण आबंटित किया गया हो, यथास्थिति अपने शेयर, निक्षेप या ऋण वापस लेने का विकल्प प्राप्त होगा।

(12)........."

---

order, as may be specified by the Registrar in this behalf in the proposed order.

(10) The Registrar may, after considering the objections referred to in sub-section (9), make such modification in the proposed order as he may deem fit and the order may contain such incidental, consequential and supplemental provisions as the Registrar may deem necessary to give effect to the same.

(11) A member or creditor who had objected to the proposed order under sub-section (9) shall have the option of withdrawing his share, deposits or loans, as the case may be, on an application which shall be made to the society to which his share, deposit or loan stands allocated by virtue of the order under sub-section (8), within a period of thirty days of the date of such order.

(12) ...."

अधिनियम का अध्याय v सहकारी सोसाइटियों के विशेषाधिकारों से सम्बन्धित है और विशेषत: धारा 30 में यह कहा गया है,—

> *"सहकारी सोसाइटी का रजिस्ट्रीकरण ऐसे नाम द्वारा उसे निगमित निकाय बनाएगा जिसके अधीन वह रजिस्ट्रीकृत की गई है, और जिसके पास शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा होगी और संपत्ति धारण करने, संविदा करने, वाद संस्थित करने और प्रतिरक्षा करने और अन्य विधिक कार्यवाहियां करने और उन प्रयोजनों के लिए, जिसके लिए वह गठित की गई है, आवश्यक सब कार्य करने की शक्ति प्राप्त होगी।"

3. पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल श्री एम० के० राममूर्ति की प्रथम दलील यह थी कि सहकारी सोसाइटियों के समामेलन का उपबंध करने वाली कोई भी विधि अनुच्छेद 19(1)(ग) का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन करती है। अनुच्छेद 19(1)(ग) सभी नागरिकों को संगम या संघ बनाने के अधिकार की प्रत्याभूति देता है। श्री राममूर्ति के अनुसार किसी नगरिक का सोसाइटी बनाने अथवा किसी सहकारी सोसाइटी का सदस्य होने के अधिकार में तब हस्तक्षेप होता है जब किसी सोसाइटी को, जिसका कि वह सदस्य बन गया है, ऐसे सदस्यों वाली किसी अन्य सोसाइटी में समामेलित किया जाता है जिसमें वह सम्मिलित होने के लिए रजामंद न हो। अनुच्छेद 31-क(1)(ग) इस दलील का पूर्ण उत्तर देता है। इसमें यह उपबंध है कि दो या अधिक निगमों को लोकहित में या उन निगमों में से किसी का उचित प्रबंध सुनिश्चित करने के उद्देश्य से समामेलित करने का उपबंध करने वाली कोई भी विधि इस आधार पर शून्य नहीं समझी जायेगी कि वह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी भी अधिकार से असंगत है अथवा कोई अधिकार छीनती है या उसे न्यून करती है। श्री राममूर्ति ने यह तर्क देकर इस बात का खण्डन करने का प्रयत्न किया है कि कोई भी सहकारी सोसाइटी अनुच्छेद 31-क(1)(ग) में उस पद के अर्थ में निगम नहीं है। उनके अनुसार संविधान से

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "The registration of a co-operative society shall render it a body corporate by the name under which it is registered having perpetual suceession and a common seal, and with power to hold property, enter into contract, institute and defend suits and other legal processdings and to do all things necessary for the purposes for which it is constituted."

ऐसी स्कीम का पता चलता है जो सहकारी सोसाइटियों को निगमों से अलग करती है और दोनों कभी मिल नहीं सकते। अपनी दलील को सिद्ध करने के लिए उन्होंने संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 43 और 44 तथा सूची 2 की प्रविष्टि 25 की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने संविधान (चतुर्थ संशोधन) अधिनियम 1955 से संबंधित उद्देश्यों और कारणों के कथन और संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। संविधान (चतुर्थ संशोधन) अधिनियम, 1955 द्वारा अनुच्छेद 31-क(1) में खण्ड (ग) अंतःस्थापित किया गया था। उनकी दलील यह थी कि विधायी आशय कम्पनियों और कानूनी निगमों के समामेलन का उपबंध करने हेतु ही केवल विधान बनाना था और उसे अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों से विरोध के आधार पर ही चुनौती नहीं दी जा सकती थी। उनके अनुसार अनुच्छेद 31-क(1)(ग) द्वारा दिया गया संरक्षण कभी भी सहकारी सोसाइटियों को उपलब्ध नहीं था और न ही उन्हें उपलभ्य कराये जाने के लिए आशयित था, चूंकि 'निगम' शब्द के व्यापक अर्थ में सहकारी सोसाइटी सम्मिलित नहीं है।

4. हम अनुच्छेद 31-क(1)(ग) में आने वाले 'निगम' शब्द का ऐसा सीमित या संकुचित निर्वचन करने के लिए कोई औचित्य पाने में असमर्थ हैं। दूसरी ओर हमारा यह विचार है कि अनुच्छेद 31-क(1)(ग) में उल्लिखित 'निगम की लोक हित में या उचित प्रबंध' की मूल अपेक्षा में पद का व्यापक निर्वचन करने की अपेक्षा है चूंकि लोक हित से कोई हित अधिक उच्च नहीं हो सकता। तथापि हम निर्वचन के नियमों से विलग नहीं होना चाहते हैं। चूंकि हम इस बात की परीक्षा करना चाहते हैं कि निगम का क्या अर्थ है और साधारणतः और संविधान की स्कीम में क्या सम्मिलित है।

5. निगम क्या है? हाल्सबरीज लाज आफ इंग्लैंड, चतुर्थ संस्करण, जिल्द 9, पैराग्राफ 1201 में यह कहा गया है—

> "निगम (संकलित निगम के मामलों में) ऐसे व्यक्तियों के निकाय या (एकल निगम के मामले में) ऐसे पद के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसे विधि द्वारा एक ऐसा व्यक्तित्व रखने वाले के रूप में मान्यता प्रदान की गई है जो निगम के सदस्यों के पृथक् व्यक्तित्व से या तत्समय प्रश्नगत पद के धारक के व्यक्तित्व से सुभिन्न है।"

संकलित निगम को पैराग्राफ 1204 में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है—

> "ऐसे व्यक्तियों का निगम, जो कृत्रिम रूप में शाश्वत उत्तराधिकार वाले विशेष अभिधान के अधीन या एक निकाय में संयुक्त हों और जिनमें विधि की नीति द्वारा और व्यक्ति के रूप में अनेक मामलों में कार्य करने की क्षमता विनिहित की गई हो, विशेषतः संपत्ति लेने और देने, बाध्यताओं की बाबत संविदा करने, वाद लाने और स्वयं उसके विरुद्ध वाद लाए जाने, सामान्य रूप से विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का उपभोग करने और विभिन्न प्रकार के राजनैतिक अधिकारों का प्रयोग करने, जो उसकी संस्था की परिकल्पना के अनुसार न्यूनाधिक रूप में व्यापक हों, अथवा उसके सृजन के समय या उसके अस्तित्व की किसी पश्चात्वर्ती कालावधि के समय उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने की क्षमता।"

इस न्यायालय ने **बोर्ड आफ ट्रस्टीज, आयुर्वेदिक एंड यूनानी तिबिया कालेज, दिल्ली बनाम दिल्ली राज्य**[1] के मामले में इस प्रश्न का उत्तर दिया था कि क्या न्यासी बोर्ड, जो मूल रूप से सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन रजिस्ट्रीकृत हुआ था और एक नया न्यासी बोर्ड, जो विधानमण्डल के अधिनियम, जिसे तिबिया कालेज ऐक्ट, 1952 कहा गया है, द्वारा समामेलित हुआ था उक्त अधिनियम द्वारा पुराना बोर्ड विघटित हुआ था और नया बोर्ड गठित हुआ था । क्या वे निगम थे। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि पुराना बोर्ड निगम नहीं था किन्तु नया बोर्ड निगम था। इस प्रश्न के उठाये जाने पर कि निगम क्या है, न्यायालय ने हमारे द्वारा पहले से ही उद्धृत हाल्सबरीज लाज आफ इंग्लैंड में अंतर्विष्ट कथन के प्रति निर्देश से इसका उत्तर दिया था और निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "इसलिए संकलित निगम की केवल एक ही हैसियत है अर्थात् उसकी निगमित हैसियत। संकलित निगम एक व्यापारिक निगम अथवा गैर-व्यापारिक निगम हो सकता है। व्यापारिक निगम के सामान्य उदाहरण ये हैं: (1) चार्टर कम्पनियां, (2) संसद के विशेष अधिनियमों द्वारा निगमित कम्पनियां, (3) कम्पनी अधिनियम आदि के अधीन रजिस्ट्रीकृत कम्पनियां। गैर व्यापारिक निगम के उदाहरण ये हैं:

---

[1] (1962) सप्ली० 1 एस० सी० आर० 156.

(1) नगर निगम, (2) जिला बोर्ड, (3) हितकारी संस्थानें, (4) विश्वविद्यालय आदि। निगम की विधिक धारणा में एक आवश्यक तत्व यह है कि उसकी पहचान सतत है अर्थात् उसके मूल सदस्य और उसके या उनके उत्तराधिकारी एक ही हैं। विधि में व्यष्टि निगम या सदस्य, जिनसे वह गठित हुआ है, स्वयं निगम से बहुत कुछ पूर्णतः भिन्न है। निगम एक विधिक व्यष्टि है जैसे कि एक व्यष्टि। इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निगम के लिए नाम आवश्यक है। संकलित निगम साधारण नियम के अनुसार उसकी सामान्य मुद्रा के अधीन केवल विलेख द्वारा कार्य करता है या उसकी इच्छा व्यक्त करता है। आजकल इंग्लैण्ड में निगम दो पद्धतियों में से किसी एक या अन्य पद्धति द्वारा सृजित किया जाता है अर्थात् क्राउन से रायल चार्टर आफ इनकारपोरेशन द्वारा अथवा संसद के प्राधिकार द्वारा अर्थात् कानून के द्वारा या उसके आधार पर। यह कहने के लिए बहुत पुरानी नजीर है कि निगम के लक्षणों में निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं : (1) निगमन का विधिपूर्ण प्राधिकार, (2) निगमित किये जाने वाले व्यक्ति, (3) नाम जिसके द्वारा व्यक्ति निगमित किये जाते हैं, (4) स्थान और (5) निगमन दर्शाने के लिए विधि में पर्याप्त शब्द। निगम के सृजन के लिए कोई विशेष शब्द आवश्यक नहीं है। निगमित करने के लिए आशय दर्शाने वाली कोई अभिव्यक्ति पर्याप्त होगी।"

इसके पश्चात् न्यायालय ने सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के विभिन्न उपबंधों पर ध्यान दिया है जिनमें उनके अनुसार निगमित करने का आशय उपदर्शित करने के लिए पर्याप्त शब्द अंतर्विष्ट नहीं हैं किन्तु इसके प्रतिकूल यह दर्शाने वाले उपबंध अंतर्विष्ट हैं कि ऐसे आशय का अभाव था। इसलिए उन्होंने मत व्यक्त किया : इसलिए हम निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उपर्युक्त उपबन्ध संकलित निगम के मुख्य आवश्यक लक्षण सिद्ध नहीं करते हैं अर्थात् सोसाइटी को निगमित करने का आशय। इस अगले प्रश्न पर विचार करने पर कि क्या नया बोर्ड निगम था, न्यायालय को धारा 3 की उपधारा (2) के प्रति निर्देश से प्रश्न का उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं थी। धारा 3 की उपधारा (2) में यह कहा गया है कि बोर्ड शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला एक निगमित निकाय होगा और उक्त नाम द्वारा वह वाद ला सकेगा और उस पर वाद लाया जा सकेगा। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि धारा 3 की उपधारा (2) में स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि

आक्षेपित अधिनियम के अधीन गठित बोर्ड को निगम की हैसियत दी गई है। अन्य शब्दों में नया बोर्ड शब्द के पूर्ण अर्थ में निगम है।

6. हम पंजाब ऐक्ट की धारा 30 पहले ही उद्धृत कर चुके हैं जो प्रत्येक रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी को ऐसे निगमित निकाय की हैसियत प्रदत्त करती है जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा है और जिसे संपत्ति धारित करने, संविदा करने, वाद संस्थित करने और उसकी प्रतिरक्षा करने और अन्य विधिक कार्यवाहियां करने और उन प्रयोजनों के लिए, जिसके लिए वह गठित किया गया है, सब आवश्यक कार्य करने की शक्ति है। इसलिए इस बात में तनिक संदेह नहीं हो सकता कि सहकारी सोसाइटी एक निगम है जैसा सामान्य रूप में समझा जाता है। क्या संविधान की स्कीम इसमें कोई प्रभेद करती है ? हम नहीं मानते।

7. सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 43 इस प्रकार है—

> "43. व्यापार निगमों का, जिनके अंतर्गत बैंककारी, बीमा और वित्तीय निगम हैं किन्तु सहकारी सोसाइटी नहीं हैं, निगमन, विनियमन ओर परिसमापन।"

उसी अनुसूची की प्रविष्टि 44 इस प्रकार है—

> "44. विश्वविद्यालयों को छोड़कर ऐसे निगमों का चाहे व्यापार निगम हो या नहीं जिनके सदस्य एक राज्य तक सीमित नहीं हैं, निगमन, विनियमन और परिसमापन।"

सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 32 इस प्रकार है—

> "32. ऐसे निगमों का, जो सूची 1 में विनिर्दिष्ट निगमों से भिन्न है और विश्वविद्यालयों का निगमन, विनियमन और परिसमापन अनिगमित, व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और धार्मिक और अन्य सोसाइटियां और संगम सहकारी सोसाइटियां।"

श्री राममूर्ति के अनुसार सूची 1 की प्रविष्टि 43 में सहकारी सोसाइटी का अभिव्यक्त रूप से अपवर्जन और पृथक् रूप से सूची 2 की प्रविष्टि 32 में सहकारी सोसाइटियों का अभिव्यक्त रूप से सम्मिलित किया जाना, किन्तु सूची 1 में विनिर्दिष्ट निगमों से भिन्न निगमों के अतिरिक्त और उनके साथ विश्वविद्यालय स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित करते हैं कि संवैधानिक स्कीम

सहकारी सोसाइटियों को निगमों से भिन्न संस्थाओं के रूप में मानने के लिए परिकल्पित थी। दूसरी ओर कोई भी व्यक्ति यह सोचेगा कि सूची 1 की प्रविष्टि 43 और सूची 2 की प्रविष्टि 32, दोनों में सहकारी सोसाइटियों का अन्य निगमों के साथ मूल रूप से उल्लेख यह दर्शाता है कि संविधान निर्माताओं का यह मत था कि सहकारी सोसाइटियों की वही हैसियत है जैसे अन्य निगमों की और सब निगम थे। वास्तव में सूची 1 की प्रविष्टि 43 से सहकारी सोसाइटी का स्पष्ट रूप से अपवर्जन इस मत को दर्शाता है कि ऐसे अपवर्जन के सिवाय सहकारी सोसाइटियां 'निगम' शब्द के अर्थ में सम्मिलित की जाएंगी।

8. संविधान (चतुर्थ संशोधन) अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का कथन और उससे संबंधित संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट श्री राममूर्ति के तर्क को अग्रसर नहीं करती है। अनुच्छेद 31-क(1)(ग) के संबंध में उद्देश्यों और कारणों के कथन में निम्नलिखित बात कही गई है—

> "अब कम्पनी विधि में विचाराधीन सुधार जैसे कि मैनेजिंग एजेंसी पद्धति की उत्तरोत्तर समाप्ति, राष्ट्रीय हित में दो या उससे अधिक कम्पनियों को अनिवार्य समामेलन के लिए उपबंध किसी उपक्रम का किसी एक कम्पनी से दूसरी कम्पनी में अंतरण आदि को चुनौती से परे रखना अपेक्षित है।"

संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट में, जहां तक वह सुसंगत है, यह कहा गया है—

> "उप-खण्ड (सी) और (डी) में 'निगम' शब्द 'कम्पनी' शब्द के लिए प्रतिस्थापित किया गया है ताकि कानूनी निगमों तथा कम्पनियों को सम्मिलित किया जा सके।"

श्री राममूर्ति के अनुसार उद्देश्यों और कारणों का कथन तथा संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट यह दर्शाती है कि प्रारंभ में केवल कम्पनियों के समामेलन से संबंधित विधान को संरक्षण देने के लिए ही वह प्रस्तावित था किन्तु बाद में कानूनी निगमों को संरक्षण विस्तारित करना भी उचित माना गया था इसलिए 'निगम' शब्द 'कम्पनी' शब्द के स्थान पर अधिनियम में प्रतिस्थापित किया गया था जिसे विधेयक में उल्लिखित किया गया था। इस दलील में कोई सार नहीं है। संसद् द्वारा स्पष्ट रूप से यह सोचा गया था कि संरक्षण केवल कम्पनियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए किन्तु ऐसे निगमों तक भी

विस्तारित किया जाना चाहिए जिसमें वास्तविक रूप से कानूनी निगम भी सम्मिलित किये जा सकें। बहुत ही व्यापक पद 'निगम' का प्रयोग किया गया था जिससे कि सभी कम्पनियां, कानूनी निगम और इसी के समान अन्य संस्थाएं भी उसके अंतर्गत लाई जा सकें। इस बात का कोई संकेत नहीं है कि 'निगम' जैसे व्यापक पद के प्रयोग के होते हुए भी वह पद कम्पनियों से भिन्न निगमों और कानूनी निगमों को अपवर्जित करने के लिए आशयित था। संसद ने स्पष्ट रूप से किसी भी प्रकार के निगमों के समामेलन से संबंधित विधान के संरक्षण को सीमित करने की दृष्टि से इस व्यापक शब्द का प्रयोग करना पसंद नहीं किया था किन्तु सभी प्रकार के निगमों के समामेलन से संबंधित विधान के संरक्षण की दृष्टि से इस व्यापक अभिव्यक्ति का प्रयोग किया था।

9. श्री राममूर्ति द्वारा उठाए गए मुख्य प्रश्न का उत्तर हमें इतना स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस पर और चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि हम **दमयंती नारंग** बनाम **भारत सघं**[1] के मामले पर अवश्य ही ध्यान देंगे। विद्वान् काउन्सेल ने उक्त मामले का इस आधार पर अवलंब लिया है कि अनुच्छेद 31-क(1)(ग) धारा 13(8), (9) आदि को कोई संरक्षण प्रदान नहीं करता। वह मामला हमारे समक्ष की किसी भी स्थिति को लागू नहीं होता है। वह एक ऐसा मामला था जिसमें कानून द्वारा एक अरजिस्ट्रीकृत सोसाइटी को रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी में संपरिवर्तित किया गया था जिसकी मूल सोसाइटी से किसी भी प्रकार की कोई समानता नहीं थी। नये सदस्य बहुत अधिक संख्या में सम्मिलित किये जा सकते थे ताकि मूल सदस्य कम हो सकें और वे अल्पमत में हो जाएं। सोसाइटी की गठन स्वयं अधिनियम द्वारा किया गया था तथा सदस्यों के, जिन्होंने मूल सोसाइटी का निर्माण किया था, संगम की स्वैच्छिक प्रकृति को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया गया था इसलिए न्यायालय द्वारा अधिनियम को अनुच्छेद 19(1)(छ) द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकार का उल्लंघन करने वाले रूप में अभिखण्डित कर दिया गया था। हमारे समक्ष के मामलों में हमारा संबंध ऐसी सहकारी सोसाइटियों से है जो प्रारंभ से ही कानून द्वारा शासित होती हैं और वे कानून द्वारा सृजित की गई हैं। वे कानून द्वारा नियंत्रित होती हैं और इसलिए किसी व्यक्ति को संगम बनाने की स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन के आधार पर उनके गठन में कानूनी हस्तक्षेप के बारे में कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता।

---

[1] [1971] 2 उम० नि० प० 358=[1971] 3 एस० सी० आर० 840.

1985(4) eILR(PAT) SC 133

10. विद्वान् काउन्सेल की द्वितीय दलील यह थी कि पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट की धारा 13(8) सहकारी सोसाइटियों के समामेलन के लिए उपबंध करती है, यदि रजिस्ट्रार का यह समाधान हो जाता है कि सहकारी सोसाइटियों के हित में ऐसा करना आवश्यक था जबकि सांविधानिक संरक्षण केवल तभी उपलभ्य था जब विधान लोक हित में हो अथवा निगमों में से किसी निगम का उचित प्रबन्ध सुनिश्चित करने के लिए हो। इसलिए विद्वान् काउन्सेल के अनुसार अनुच्छेद 31-क(1)(ग) का संरक्षण पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट की धारा 13(8) को उपलभ्य नहीं था चूंकि सहकारी सोसाइटी का हित अनिवार्य रूप से लोक हित में अथवा सोसाइटी के उचित प्रबन्ध के लिए नहीं भी हो सकता। यह दलील केवल शाब्दिक तर्क से अधिक नहीं थी। सहकारी आन्दोलन का मूल दर्शन और धारणा लोक हित और सहकारी सोसाइटियों के समामेलन से प्रेरित है। जब ऐसा समामेलन सहकारी सोसाइटियों के हित में हो तब वह निश्चित रूप से केवल लोक हित में है अथवा वह सोसाइटियों का उचित प्रबंध सुनिश्चित करने के लिए ही हो सकता है। विद्वान् काउन्सेल का तर्क बाल की खाल निकालने का प्रयत्न करना है इसलिए वह नामंजूर किया जाता है।

11. विद्वान् काउन्सेल की अगली दलील यह थी कि धारा 13(8), (9) और (10) सम्बन्धित सहकारी सोसाइटियों के सदस्यों को नोटिस जारी करने के लिए कोई स्पष्ट उपबंध नहीं करती है, इसलिए वे नैसर्गिक न्याय के सिद्धातों की अतिक्रमणकारी हैं। उन्होंने यह तर्क दिया कि किसी उपबंध के अभाव में नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत उपबंधों में पढ़ा जा सकता है और इसलिए प्रभावित सोसाइटियों के सदस्यों को नोटिस अनिवार्य था। उन्होंने यह तर्क दिया कि अन्यथा किसी एक सोसाइटी के सदस्य उनकी इच्छा के विरुद्ध बाध्य किए जाएंगे और उन्हें अन्य सोसाइटी के सदस्य के साथ स्वयं को समामेलित करने के लिए सुनवाई का कोई अवसर नहीं होगा। हमें इस दलील को भी नामंजूर करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। जब कोई व्यक्ति एक बार किसी सहकारी सोसाइटी का सदस्य हो जाता है तब वह सोसाइटी के मुकाबले अपना व्यक्तित्व खो देता है और उसके कानूनी और उपविधि द्वारा उसे दिये गये अधिकारों के सिवाय कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। उसे सोसाइटी के मार्फत ही कार्य करना चाहिए और बोलना चाहिए अथवा सोसाइटी के अधिकारों या कर्त्तव्यों के सन्दर्भ में केवल सोसाइटी ही निकाय के रूप में उसकी ओर से कार्य कर सकती है और बोल सकती है। इसलिए यदि कानून, जो सहकारी सोसाइटी के अनिवार्य समामेलन को प्राधिकृत

करता है, सम्बन्धित सोसाइटियों को नोटिस का उपबन्ध करता है तो नैसर्गिक न्याय की अपेक्षा का पूर्ण रूप से पालन हो जाता है। सोसाइटी को नोटिस उसके सभी सदस्यों को नोटिस के रूप में माना जाएगा। इसीलिए धारा 13(9)(क) सोसाइटी को नोटिस देने के लिए न कि सदस्यों को व्यक्तिगत नोटिस देने के लिए उपबंध करती है। तथापि, धारा 13(9)(ख) सदस्यों को सुनवाई का अवसर देने का भी उपबंध करती है यदि वे सुनवाई करवाना चाहते हैं। मेरी राय में किसी सदस्य को व्यक्तिगत रूप से नोटिस निगमित निकाय के रूप में किसी सहकारी सोसाइटी की मूल हैसियत के प्रतिकूल है और इसलिए वह अनावश्यक है। हम मामले को और विस्तृत करना आवश्यक नहीं समझते हैं सिवाय यह बतलाने के कि सदस्य को, जो विहित समय के भीतर प्रस्तावित समामेलन के बारे में आक्षेप करता है, धारा 31(11) द्वारा यथास्थिति अपने शेयर, निक्षेप या ऋण वापस लेकर के बाहर निकल जाने का विकल्प दिया गया है।

12. विद्वान् काउन्सेल की अन्य दलील यह थी कि सहायक रजिस्ट्रार, सहकारी सोसाइटी को अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रार की सब शक्तियों का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत करने वाली अधिसूचना सहायक रजिस्ट्रार को केवल ऐसे कृत्य करने के लिए समर्थ बना सकती है जो अधिसूचना की तारीख को अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रार करने के लिए प्राधिकृत था। सहायक रजिस्ट्रार अधिसूचना की तारीख के पश्चात् अधिनियम के संशोधन द्वारा रजिस्ट्रार को दी गई शक्तियों का प्रयोग करने के लिए तब तक हकदार नहीं होगा जब तक कि नवीन अधिसूचना जारी नहीं की जाती। हमारे विचार से नवीन अधिसूचना जारी करना आवश्यक नहीं होगा जहां सहायक रजिस्ट्रार प्रारम्भ में भी रजिस्ट्रार के सब कृत्य करने के लिए साधारण रूप से प्राधिकृत था। नवीन अधिसूचना संभवतः वहीं आवश्यक होगी जहां सहायक रजिस्ट्रार केवल रजिस्ट्रार के कतिपय विनिर्दिष्ट कृत्य करने के लिए ही प्राधिकृत था। यहां पर ऐसी स्थिति होने के बारे में दावा नहीं किया गया है।

13. श्री राममूर्ति की अंतिम दलील यह थी कि उच्च न्यायालय के समक्ष रिट पिटीशन में कई अन्य प्रश्न उठाये गये थे किन्तु उन पर विचार नहीं किया गया था। हम इस दलील को कोई महत्व नहीं देते हैं। पक्षकारों और काउन्सेल के लिए पिटीशनों और अपील के ज्ञापन आदि में ऐसे कई आधार उठाना असामान्य बात नहीं है किन्तु बाद में वे तर्क के दौरान स्वयं को उन आधारों में से केवल कुछ आधारों तक ही सीमित रखते हैं क्योंकि शेष

1985(4) eILR(PAT) SC 133

आधार स्वयं उनके द्वारा भी कायम रहने योग्य नहीं माने जाते हैं। इसके पश्चात् कोई पक्षकार या काउन्सेल यह शिकायत करने के लिए हकदार नहीं है कि जिन आधारों पर बहस नहीं की गई थी उन पर विचार नहीं किया गया था। व्यथित पक्षकार पुनर्विलोकन या स्पष्टीकरण के लिए उचित आवेदन फाइल करके उसके लिए आदेश करने वाले न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर सकता है। वरिष्ठ न्यायालयों का समय इस प्रश्न की जांच करने में व्यर्थ नहीं गंवाया जाना चाहिए कि क्या किसी विशेष आधार पर, जिसके बारे में अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय में कोई निर्देश नहीं पाया जाता है, उस न्यायालय के समक्ष बहस की गई थी अथवा नहीं ?

14. अपीलार्थियों में से एक अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री अरविंद कुमार ने केवल यह हवाई दलील दी है कि संविधान (चतुर्थ संशोधन) अधिनियम द्वारा अंतःस्थापित अनुच्छेद 31-क(1)(ग) और पंजाब कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट की धारा 13(8) संविधान के मूल ढांचे का ही अतिक्रमण करते हैं चूंकि वे व्यक्ति की गरिमा को प्रभावित करते हैं इसलिए वे शून्य हैं। हम इस बात को समझने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं कि किस प्रकार से किसी मनुष्य की गरिमा किसी ऐसी सहकारी सोसाइटी का, जिसका व्यक्ति सदस्य है, अन्य सहकारी सोसाइटी के साथ समामेलन द्वारा थोड़ी-सी भी प्रभावित हुई कही जा सकती है। हम इस न्यायालय में हाजिर होने वाले काउन्सेल से विशेषतः जब वे संविधान न्यायपीठ के समक्ष हाजिर होते हैं, यह आशा करते हैं कि वे इस प्रकार के बिल्कुल भी कायम न रखे जा सकने वाले तर्क नहीं देंगे। इस न्यायालय का समय जनता का समय है और काम का अत्यधिक बकाया यह दर्शाता है कि समय बहुत ही मूल्यवान होता जा रहा है। हम काउन्सेलों से उन दलीलों की उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से सावधानीपूर्वक परीक्षा करने की केवल प्रार्थना कर सकते हैं जो वे इस न्यायालय में देना चाहते हैं। सभी अपीलें खर्चे सहित खारिज की जाती हैं। हम प्रत्येक अपील का खर्चा 2,500 रुपये निर्धारित करते हैं।

अपीलें खारिज की गईं।

जैन/श०